अन्न प्राशन

संस्कार - विवेचन

श्रीराम शर्मा आचार्य

अन्न प्राशन संस्कार विवेचन

जो खाया जाता है उससे रक्त, माँस, मज्जा, हड्डी, मेद, वीर्य सप्त धातुएँ बनती हैं और शरीर का ढाँचा बनकर खड़ा हो जाता है । चेतन आत्मा के द्वारा विचार, व्यवहार का कार्य होता है । पर शरीर का कलेवर जो कुछ भी खड़ा दीख रहा है, उसमें अन्न ही प्रधान कारण है । खाया हुआ भोजन उलट–पलट कर कई तरह के रूप बदलता हुआ, शरीर के रूप में खड़ा दीखता है । आज जो वस्तु रोटी–दाल के रूप में थाली में रखी है, वही पेट में जाकर कल रस, परसों रक्त, तरसों हड्डी, अगले दिन वीर्य, तेज, ओज और फिर मन बन जायगी । बेशक रोटी जैसा रूप उस परिपाक क्रिया में पड़ जाने के बाद नहीं रह जाता । फिर भी पदार्थ वही हैं । पानी समयानुकूल भाप, बादल, ओस बिन्दु, बर्फ की चट्टान आदि के कई रंग–रूपों में परिवर्तित होता रहता है, फिर भी वस्तुतः मूल में जल का जल ही रहता है । इसी प्रकार शरीर के जो बाहरी और भीतरी अवयव, अंग–प्रत्यंग दिखाई पड़ते हैं, वे वस्तुतः अन्न के ही बदले हुए स्वरूप हैं ।

आहार न मिले तो शरीर दिन–दिन दुर्बल होता चला जायगा,

रक्त–माँस सूख जायगा और थोड़े ही दिनों में मृत्यु हो जायगी । कारण स्पष्ट है–अन्न से ही जीवन–तत्त्व मिलता है, वही रक्त–माँस बनकर जीवन धारण किये रहने की क्षमता उत्पन्न करता है । आधार ही न रहेगा तो जीवन टिकेगा किस पर ? इस तरह अन्न को शरीर ही नहीं जीवन भी कहा जा सकता है ।

उपनिषदकार ने अन्न को 'प्राण' भी कहा है । अन्न को विष्णु, अन्न को यज्ञ, और अन्न को ब्रह्म भी कहा गया है । इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य की विचारणा, भावना, आकांक्षा एवं अन्तरात्मा भी बहुत कर अन्न पर ही निर्भर रहती है । "जो जैसा खाता है, वह वैसा ही बन जाता है" की उक्ति केवल शरीर के सम्बन्ध में ही लागू नहीं होती वरन् उसका तात्पर्य मानसिक एवं आंतरिक स्थिति से भी है । पौष्टिक एवं सात्विक आहार करने वाले शरीर की दृष्टि से निरोग, बलवान, दीर्घजीवी और सुडौल होते हैं और जिनका आहार गया–गुजरा, अनुपयुक्त होता है, वे रोगी, दुर्बल, अल्पायु और बेडोल होते हैं, इसके प्रमाण पग–पग पर हर जगह मिलते हैं । इसी प्रकार यह भी एक सुनिश्चित तथ्य है कि "जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन", आहार का जैसा स्तर होगा उसके अनुरूप मनुष्य की भावनाओं का भी निर्माण होगा ।

अन्नप्राशन का प्रयोजन

बालक जब लगभग छः महीने का हो जाता है, तब उसे दूध के अतिरिक्त अन्य वस्तुयें खाने को दी जाती हैं । यह क्रम धीरे–धीरे आरंभ किया जाता है । जो बालक जल्दी ही अन्न पर टूट पड़ते हैं, उनका पेट खराब हो जाता है और पाचन तंत्र बिगड़ जाने पर बच्चा अनेक रोगों से ग्रसित ही नहीं हो जाता वरन् अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता है । बड़ी आयु में तो शरीर इतना सुदृढ़ हो जाता है कि अनुपयुक्त भोजन को भी पचा ले और उससे होने वाली हानि को सहन कर ले, किन्तु कोमल बालकों में वैसी क्षमता नहीं होती, वे

आहार की गड़बड़ी से होने वाली प्रतिक्रिया को सहन नहीं कर पाते और जल्दी ही लड़खड़ा जाते हैं । इसलिए बालकों के लिए आहार सम्बन्धी सावधानी बरतने की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है ।

प्रथम बार जब बच्चे को अन्न खिलाया जाता है, तब उस प्रक्रिया को धार्मिक वातावरण में उत्सव एवं धर्मानुष्ठान के रूप में सम्पन्न करते हैं । अन्नप्राशन इसी संस्कार का नाम है । अन्य संस्कारों की भाँति इस आयोजन में भी स्वजन सम्बन्धियों, मित्र, पड़ौसियों को एकत्रित करते हैं । मंडप, यज्ञवेदी, कलश स्थापन आदि सभी की यथावत् सुन्दर एवं आकर्षक व्यवस्था की जाती है । प्रयोजनीय उपकरण एकत्रित करने में असुविधा न हो इसलिए शाखा की ओर से अथवा आचार्य की ओर से सभी वस्तुओं का प्रबन्ध रखा जाय । लाने ले जाने की जिम्मेदारी यजमान की रहे । इस तरह बहुत-सा समय और पैसा जो उन चीजों को इकट्ठा करने में लगता है, सहज ही बचाया जा सकता है ।

अन्नप्राशन के विधान में गायत्री यज्ञ की प्रक्रिया मुख्य है । प्रधानतः वही सारा विधि-विधान काम में लाया जाता है । रक्षा विधान के बाद और अग्नि स्थापन से पूर्व (१) तुलादान (२) चम्मच पूजन (३) क्षीर प्राशन (४) विशेष पंचाहुतियाँ देने की चार विशेष क्रियायें पूरी की जाती हैं ।

तुला दान-

बालक के शरीर के बराबर अन्न तौल कर दान दिया जाता है । एक नये पलड़ों की सुन्दर तराज़ू में एक ओर बालक को बिठाते हैं और दूसरी ओर अन्न रखकर तौलते हैं । तौलने का कार्य किसी सम्मानित व्यक्ति को दिया जाय । तौलते समय 'ॐ तेजोसि शुक्रममृतम्' मन्त्र उच्चारण करते हैं । यह अन्न किसी सत्पात्र को अथवा सत्कार्य में दान कर दिया जाता है ।

"खाने से पूर्व देना" भारतीय संस्कृति का अविच्छिन्न अंग है। कमाई भले ही अपनी, अपने गाढ़े पसीने की ही क्यों न हो, पर उसे सबका सब स्वयं ही खा जाना पाप है। गीता में कहा गया है कि–तै ददाति प्रदाभेभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव स। (जो दिये बिना खाता है, सो चोर है।) श्रुति कहती है–जो अकेला खाता है, सो पाप खाता है। (केवलाघो भवति केवलादी)। इस प्रकार के अगणित शास्त्र वचन धर्म–ग्रन्थों में भरे पड़े हैं, जिनमें बताया गया है कि अपनी पूरी कमाई मनुष्य को अपने ही काम में खर्च नहीं कर डालनी चाहिए, वरन् उपभोग से पहले ही उसका एक महत्त्वपूर्ण अंश दान कर देना चाहिए। यजुर्वेद, ४० वें अध्याय का पहला मंत्र "तेन त्यक्तेन भुंजीथा" (त्याग के साथ भोग करने) का निर्देश करता है। हमारी परम्परा यही है–भोजन थाली में आते ही चींटी, कुत्ता, गाय आदि का भाग उसमें से निकाल कर पंचबलि करते हैं। भोजन ईश्वर को समर्पण कर या अग्नि में आहुति देकर तब खाते हैं। होली का पर्व तो इसी प्रयोजन के लिए ही है। नई फसल में से एक दाना भी मुख में डालने से पूर्व पहले उसकी आहुतियाँ होलिका यज्ञ में देते हैं, तब उसे खाने का अधिकार मिलता है। किसान फसल मींज–मींड़ कर जब अन्न–राशि तैयार कर लेता है, तो पहले उसमें से एक टोकरी भरकर धर्म कार्य के लिए अन्न निकालता है, तब घर ले जाता है।

भारतीय परम्परा यह रही है कि समाज का पहले और अपना पीछे ध्यान रखा जाय। मछली की प्रसन्नता और सुरक्षा तभी है, जब तालाब में पर्याप्त और अच्छा पानी रहे। पानी विषैला हो जाय तो कोई भली–भोली, चतुर और सुन्दर मछली भी अपनी प्रसन्नता और सजीवता बनाये नहीं रख सकती। जिस समाज में हम रहते हैं वह यदि दरिद्र, दीन, दुष्ट और मूढ़ होगा तो अपनी सफलता एवं सम्पन्नता भी निरर्थक चली जायगी। दूसरे बुरे लोग हमें भी चैन से

नहीं रहने देंगे । चोर और उचक्कों से भरे मुहल्ले में रहने वाले अमीर व्यक्ति की सम्पत्ति भी सुरक्षित नहीं । गन्दे-गलीज लोगों के पड़ौस में रहकर कोई स्वच्छताप्रिय व्यक्ति भी गन्दगी की हानि से बच नहीं सकता । मुहल्ले में हैजा फैले, आग लगे तो अपना घर भी सुरक्षित कहाँ रहेगा ? समस्त समाज की एक छोटी इकाई के रूप में ही मनुष्य का अस्तित्व है । कोई मशीन जीर्ण-शीर्ण हो जाय तो उसमें लगे हुए अच्छे पुर्जे की भी क्या कीमत है ? उसी प्रकार समाज की स्थिति पर बहुत करके अपनी और अपनी पीढ़ियों की सुख-शान्ति निर्भर रहती है ।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विचारशील लोगों ने सही कहा है कि अपने शरीर और परिवार की व्यवस्था बनाते रहने मात्र से काम न चलेगा वरन् समाज की स्वस्थता की भी उतनी ही चिन्ता करनी पड़ेगी, उतनी ही जिम्मेदारी अनुभव करनी पड़ेगी । यह कार्य तभी सम्भव है, जब हमारा योगदान समाज के उत्कर्ष में लगता रहे । केवल विचार करते रहने से क्या बनेगा ? काम करने से ही कुछ बात बनती है । समाज के प्रति यदि हम सच्चे, बफादार और ईमानदार हैं तो अपनी शक्ति, सामर्थ्य का एक अंश भी उसे देना चाहिए । समय, श्रम, धन, विद्या, प्रतिभा एवं क्षमता का एक बड़ा अंश हमें समाज-कल्याण कार्यों के लिए निश्चित रूप से लगाये रहना चाहिए । इसे आवश्यक एवं अनिवार्य मानना चाहिए । यह धर्म कर्तव्य एवं प्राथमिकता दिये जाने योग्य है । जो अपनी कमाई आप ही खाता है, वह कानून या प्रथा-परम्परा के अनुसार भले ही सभ्य हो, नैतिकता एवं धार्मिकता के अनुसार चोर है । ईश्वर ने जो कुछ अनुदान दिया है, उसे अपने दूसरे भाई-बहिनों को बाँटे बिना स्वयं ही भोगते रहा जायगा तो यह एक घृणित प्रकार की संकीर्णता एवं दुष्टता ही मानी जायगी ।

भारतीय धर्म एवं संस्कृति के किसी अनुयायी को स्वार्थी और

संकीर्ण, कृपण और कंजूस, लालची और मदान्ध नहीं होना चाहिए। उदारता, सेवा और परमार्थ का बड़े से बड़ा प्रकाश उसके जीवन में रहना चाहिए। इसके बिना उसको ऋषि सन्तान, आस्तिक एवं धार्मिक कहलाने का अधिकार नहीं मिलता। भारतीय धर्म महानता का ही दूसरा नाम है और इस महानता को किसी के द्वारा समाज कल्याण के लिए किए गये निस्वार्थ श्रम से ही आँका जा सकता है। धर्म और दान एक ही बात है। इसीलिए हिन्दू धर्म की हर छोटी–बड़ी परम्परा में दान को अनिवार्य शर्त के रूप में जोड़ दिया गया है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हर संस्कार में, हर धर्मानुष्ठान में, देव–दर्शन में, दान के बिना काम नहीं चलता। यह परम्परा इसीलिए है कि मनुष्य सामान्य और असामान्य हर स्थिति में दान करने की बात उदार और उत्साह भावना के साथ विचारता और करता रहे।

तुलादान में उसी पुण्य परम्परा को प्रधान रूप से प्रदर्शित किया जाता है। बच्चा अन्नप्राशन करने की स्थिति में आ जाय–तो इस हर्ष की अभिव्यक्ति कैसे की जाय ? इस नये अवतरण का स्वागत कैसे हो ? तरीका एक ही हो सकता है कि लोक–मंगल की आवश्यकतायें पूर्ण करने के लिए–समाज को सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए दान किया जाय। बालक के शरीर को तराजू के एक पलड़े में और अन्न को दूसरे पलड़े में रखकर तौलने का अर्थ यह है कि यह जितना भारी है उतना अपने भार के अनुरूप वह दान भी करेगा। भार से तात्पर्य सामर्थ्य से है। वैभव एवं विभूतियों से है। स्वल्प शक्ति वाले लोकमंगल के लिए थोड़ा काम करें तो अधिक शक्ति वाले को अधिक करना चाहिए। यह प्रतिस्पर्द्धा कार्य के बाह्य स्वरूप के अनुरूप नहीं वरन् शक्ति के अनुपात से होनी चाहिए। बालक के शरीर में जितना भार है, जितनी उसकी सामर्थ्य है, उसको तौलते हुए दान कर रहा है। इस प्रकार की सामर्थ्य सम्पत्ति की मात्रा पर निर्भर नहीं, मनुष्य की आंतरिक उदारता एवं महानता पर

निर्भर रहती है । कंजूस लखपती दो रुपया देते हुए झिझकता है, पर उदार घसियारा अपना पेट काटकर चार रुपया दे सकता है । धर्म-कर्तव्यों में इस उदारता को ही सामर्थ्य कहा गया है । इस दृष्टि से जो जितना भारी हो, उसे उसमें तनिक भी कोताही किये बिना अपने शरीर के, भावना के भार के अनुसार दान करना चाहिए । पैसे का ही नहीं श्रम, समय, विद्या, प्रतिभा आदि का भी । यही तो तुलादान की आत्मा है ।

आज दान तो बहुत लोग करते हैं, पर उसमें विवेक नहीं रहने से वह धूर्तों और कुपात्रों के हाथ चला जाता है । फलस्वरूप वे अधिक निठल्ले, भिक्षा जीवी एवं अनैतिक काम करने वाले बन जाते हैं । हराम की कमाई हर आदमी के व्यक्तित्व एवं चरित्र को गिराती है । जो लोग समाज-सेवा में संलग्न हों उनके निर्वाह का प्रबन्ध करना जनता का कर्तव्य है । पूर्वकाल में देश, धर्म, समाज और संस्कृति के उत्कर्ष में, जन जागरण एवं लोक निर्माण में निरन्तर लगे रहने वाले ब्राह्मणों को समय-समय पर सम्मानपूर्वक भोजन तथा धन इसी आधार पर दिया जाता था कि वे निर्वाह की चिन्ता छोड़कर पूरा समय लोक कल्याण के लिए लगा सकें । आज तो वंश विशेष में जन्मे हुए व्यक्ति ही लोक-मंगल का कोई काम न करते हुए भी दान बटोरना अपना अधिकार मान बैठे हैं । मूढ़ जनता उन्हें देने में पुण्य मानती भी है । इस दुर्बुद्धि ने समाज का भारी अहित किया है । लाखों व्यक्ति जो उपयोगी कार्य कर सकते थे, हराम की आमदनी देखकर निठल्ले हो गये, भिक्षा ने उनकी आत्मा गिरा दी । दूसरी ओर उस दान द्वारा जो उपयोगी कार्य जन कल्याण के लिए हो सकते थे, वे बन्द हो गये । जितना धन आज धर्म के नाम पर निरर्थक व्यक्तियों तथा कार्यों पर बर्बाद किया जाता है, वह यदि सार्थक कार्यों में खर्च किया जाने लगे तो हमारे समाज का वर्तमान स्वरूप ही बदल जाय ।

आज के युग की तथा अधःपतित मानव की एक ही आवश्यकता है कि उसे जीवनोत्कर्ष की प्रेरणा देने वाला सद्ज्ञान मिले । इसी से व्यक्ति तथा समाज में दुःखों, अभावों, समस्याओं एवं विपत्तियों का समाधान, होगा । दान के नाम पर जो भी पैसा विवेकपूर्वक दिया जाय उसकी एक-एक पाई युग धर्म के अनुरूप-जन जागरण के प्रयोजन में ही खर्च होनी चाहिए । समय, श्रम, विद्या, प्रतिभा आदि का भी जो अनुदान जिससे हो वह उसी कार्य के लिए करे । तुला दान के समय जो अन्न दान किया जाय वह किसी पेशेवर भिक्षुक को देने से काम न चलेगा वरन् उसका उपयोग शिक्षा एवं विद्या दान के लिए होना चाहिए । यह धन किसी विद्यालय, पुस्तकालय एवं सद्ज्ञान-वर्धक आयोजन के लिए देना चाहिए ।

प्राचीनकाल में अन्न एवं पशु ही धन थे । इसलिए अन्न-दान, गौ-दान की परम्परा ही उन दिनों चलती थी । अब रुपये-पैसे का प्रचलन हो जाने के कारण तुलादान में तौले गये अन्न का मूल्य, उतना ही या उससे अधिक किसी लोकोपयोगी कार्य के लिए दिया जा सकता है । प्रतीक रूप में तुलादान की प्रक्रिया पूरी करके, दान का दूसरा व्यवस्थित तरीका सोचा जा सकता है । घर में नये बच्चे के आगमन की खुशी में सत्प्रयोजन के लिए जो अधिकाधिक दान किया जाय, वह सब तुलादान में ही गिना जायगा । तुलादान में बालक का कल्याण होना माना जाता है । वह जीवन के आरम्भ से ही दान की प्रक्रिया को हृदयंगम किये रहेगा तो निश्चय ही भावी जीवन में महापुरुष बनेगा । ऐसे सुविकसित अन्तःकरण वाले लौकिक एवं पारलौकिक जीवन में सच्ची प्रगति एवं समृद्धि का लाभ उठाते हैं । इसलिए बालक की प्रशिक्षा अन्नप्राशन के समय यही की जाती है कि वह खाने से पहले दान की बात सोचा करे, जैसा कि आज तुलादान के समय किया जा रहा है । उपस्थित लोगों को भी यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि शरीर की सार्थकता दान में है । उन्हें अपनी

कृपणता छोड़कर लोकमंगल के लिए मुक्त हस्त से अपनी शक्तियों को लगाने के लिए तत्पर होना चाहिए ।

चम्मच पूजन--

तुलादान के उपरान्त खीर चटाने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । इसके लिए चाँदी का चम्मच प्रयुक्त होता है । जहाँ ऐसे चम्मच न मिलें वहाँ चाँदी की किसी वस्तु के सहारे खीर खिलाते हैं । इस चम्मच का प्रथम पूजन किया जाता है, तब वह उपयोग में आने योग्य बनता है । पूजन का मंत्र "ओ३म् मनोजूतिर्जुषा ताम्....." है ।

पाश्चात्य देशों में भोजन बनाते तथा खाते समय हाथ से नहीं छूआ जाता । इन कार्यों के लिए वहाँ प्रथक-प्रथक उपकरण प्रयुक्त होते हैं । उनका कहना है कि नाखूनों के नीचे गन्दगी का कुछ अंश बना ही रहता है । साथ ही शरीर के हर अंग से पसीना निकलता है, जो अन्य छिद्रों से निकलने वाले दूषित स्रावों की तरह ही अशुद्ध होता है । भोजन बनाने या खाने में हाथ का स्पर्श लगने से उसमें इन दूषित तत्वों के मिल जाने और शरीर के भीतर पहुँचने पर हानि पहुँचने की संभावना रहती है । इसी तर्क के अनुसार वे लोग भोजन करने में छुरी, काँटा, चम्मच आदि का उपयोग करते हैं । हमारे देश में वैसा प्रचलन एवं परिस्थिति नहीं हैं । यह दूसरी बात है कि तर्क की यथार्थता को ध्यान में रखते हुए इस सम्बन्ध में जितना कुछ हो सकता हो, अवश्य करना चाहिए । विशेषतया छोटे कोमल बालकों को आहार सम्बन्धी अशुद्धियाँ अधिक हानि पहुँचा सकती हैं, इसलिए उनके प्रारम्भिक भोजन उपकरण के रूप में चम्मच का प्रयोग किया जाय तो अच्छा ही है ।

चाँदी सब धातुओं से पवित्र मानी गई है । हर धातु में अपने सूक्ष्म गुण होते हैं । चाँदी में सात्विकता अधिक है । इसी से जिन्हें सुविधा होती है, वे चाँदी के बर्तनों में भोजन करते हैं ।

विवाह-शादियों में भी भोजन करने के बर्तन चाँदी के देने का रिवाज है । मन्दिरों में देव-प्रतिमाओं के पूजा-उपकरण में तथा निजी पूजा-उपासना में चाँदी के उपकरणों का प्रयोग किया जाता है । चाँदी के जेबर भी बहुत करके इसी उद्देश्य से पहने जाते थे । भोजन करने में चम्मच चाँदी का रहे, इसमें आहार को मुँह में पहुँचाने का प्रसाधन अधिक सात्विक रखने का प्रयोजन है । चाँदी सम्पन्नता की प्रतीक भी है । अपना बालक चाँदी के बर्तनों का उपयोग कर सकने लायक सम्पन्न बने, यह शुभ कामना भी इस चम्मच पूजा में सन्निहित है । मंत्रों से अभिमन्त्रित सम्पूजित चम्मच, अध्यात्म विज्ञान के अनुसार अपेक्षाकृत अधिक पवित्र और अधिक उपयुक्त रहता है । जिस बर्तन में वह खीर रखी जाय वह तस्तरी, कटोरी आदि भी यदि चाँदी की हो तो अधिक उपयुक्त है । तब दोनों का ही धूप, दीप, गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि से पूजन करना चाहिए ।

यह रजत पात्र आहार के साधन हैं । साधनों को पवित्र रखने के लिए चाँदी का उपयोग तथा पूजा-विधान का प्रयोग किया जाता है । उद्देश्य यही है कि आहार पवित्र साधनों के माध्यम से ग्रहण किया जाय । आध्यात्मिक दृष्टि से प्रसाधनों का तात्पर्य तरीकों से है । आहार अर्थात् आजीविका को जिन साधनों से प्राप्त किया, कमाया जाता है, वे पवित्र होने चाहिए । बेईमानी, चोरी, दगाबाजी से आजकल लोग अपनी कमाई बढ़ाते हैं । कितने ही व्यक्ति बिना परिश्रम किये, बैठे-बैठे ब्याज-भाड़े की आमदनी से, पुरखों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं । यह दोनों ही तरीके अवांछनीय हैं । इस प्रकार जो लोग आमदनी कर रहे होंगे, उसका उपयोग कर रहे होंगे, वे अनुपयुक्त खा रहे होंगे और उस दुष्ट आहार से न केवल उनका शरीर एवं मन ही अस्वस्थ रहेगा वरन् भविष्य भी अन्धकारमय बनेगा ।

ईमानदारी और मेहनत-मजूरी से उचित मात्रा में सीमित

आमदनी होती है । उससे वे ही लोग काम चला सकते हैं जो अपने खर्च पर 'बजट' पर कड़ा नियंत्रण रखते हैं, जो अत्यन्त आवश्यक एवं उचित है उसी में खर्च करते हैं, वे सीमित आमदनी में खर्च चला सकते हैं, पर जिनने अपनी आवश्यकतायें बढ़ा रखी हैं, जो अमीरी का ढोंग बनाते हैं, शेखी-खोरी में अपनी शान समझते हैं, व्यसनों और शोक-मौज में डूबे रहते हैं, अपने से अधिक धनवानों तथा फिजूलखर्ची करने वाले बेबकूफों की नकल करते हैं, वे ईमानदारी की सीमित कमाई में काम नहीं चला सकते । वह उनके लिए अपर्याप्त होती है । इसी प्रकार जो लोग लालची हैं, तृष्णा से ग्रसित अधिकाधिक जोड़ने, जमा करने, बड़ी-बड़ी जायदादें या अमीरों जैसी शान बनाने के लिए-बैंक बैलेंस बढ़ाने, जेबर-जवाहरात बनवाने, बेटे-पोतों को सात पुश्त तक बैठकर खाने लायक साधन जुटा जाने की माया भरी चिन्ता में फँसे रहते हैं । उनके लिए ईमानदारी से मिल सकने वाली थोड़ी-सी कमाई असन्तोषजनक रहती है, उतने में उनका काम नही चलता । इस कमी की पूर्ति कहाँ से हो ? इसका उत्तर बेईमानी से आमदनी बढ़ाने के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता ।

अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूस जैसे साधन अभी इस देश में नहीं हैं, जिनसे कोई व्यक्ति अपनी उपार्जन क्षमता आसानी से बढ़ा सके या एक को छोड़कर दूसरा ऐसा काम ढूँढ़ सके जिसमें आमदनी की असाधारण वृद्धि हो जाय । बचे हुए समय का उपयोग जिनमें हो सके वैसे जापान जैसे घरेलू उद्योग-धन्धे पनपने की स्थिति भी यहाँ नहीं है । देर्श-व्यापी भयानक गरीबी, बेकारी को देखते हुए भारतीय नागरिक को इन दिनों इसी में संतोष करना पड़ेगा कि किसी प्रकार उसके गुजारे लायक व्यवस्था हो जाये । जिन्हें इतने से संतोष नहीं, जो बहुत ऊँचे स्तर का खर्चीला जीवन जीना चाहते हैं या दौलत जमा करना चाहते हैं, उन्हें निष्ठुरतापूर्ण अनैतिक एवं अवांछनीय तरीके

ही अपनाने पड़ेंगे । आज हर क्षेत्र में बेईमानी, जालसाजी, लूट–खसोट, शोषण, अपहरण की बाढ़ आ रही है । क्या व्यापारी, क्या सरकारी कर्मचारी, क्या मजदूर, क्या महन्त, हर क्षेत्र में आर्थिक भ्रष्टाचार बुरी तरह बढ़ रहा है । बढ़े हुए खर्चे की पूर्ति के लिए और कोई रास्ता भी तो नहीं । कर्ज लेकर काम चलाना और फिर उसे चुकाने से इनकार कर देना तथा विभिन्न प्रकार के अपराधों को अपनाना, आज मनुष्य के लालच एवं विलास का ही दुष्परिणाम है ।

इस अवांछनीय स्थिति को मिटाने के लिए जन साधारण के मन में यह आस्था जमाई जानी चाहिए कि ईमानदारी और परिश्रम की कमाई से ही काम चलाया जाय । मितव्ययिता बरती जाय और सादगी अपनाई जाय, तो औसत आमदनी में शांतिपूर्वक काम चल सकता है । बजट बनाकर आय–व्यय का सन्तुलन बना लिया जाय तो गरीबी में भी सज्जनता का जीवन जीया जा सकता है । यही मान्यता लोक–जीवन में प्रवेश करे तो ही सामाजिक अशांति का ठोस निराकरण संभव हो सकेगा ।

चाँदी के चम्मच का पूजन करने का प्रयोजन ऐसी ही साधन सात्विकता के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना है । अनुचित साधनों से कमाई हुई दौलत को लेने से वैसे ही डरना चाहिए जैसा कि सर्प, बिच्छू, व्याघ्र, विष, तेजाब, बारूद जैसी भयानक वस्तुओं से डरा जाता है । बेईमानी का पैसा कभी फलता–फूलता नहीं, वह चोरी, ठगी, बीमारी, नशेबाजी, व्यभिचार, राजदण्ड आदि ऐसे कार्यों में चला जाता है जिनके लिए पीछे पश्चात्ताप ही करना पड़ता है । उससे अपनी और अपने परिवार की बुद्धि भ्रष्ट होती है, कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा ऐसा ही पैसा देता है । व्यक्ति और समाज के पतन की अनेकों परिस्थितियाँ उपज ही पड़ती हैं । इससे सभी को कष्ट और दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है । अतएव अर्थ साधनों की पवित्रता पर अत्यधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । इस तथ्य से सभी को

अवगत होना चाहिए । चाँदी के चम्मच का पूजन करना, उसमें पवित्रता का समावेश करना इस बात का संकेत है कि इस बालक को उचित साधनों से कमाया हुआ अन्न ही ग्रहण करना चाहिए । प्रकारांतर से यह शिक्षा अभिभावकों तथा उपस्थित लोगों के लिए ही है, क्योंकि बालक जब कमाने-खाने लायक होने पर इस शिक्षा को स्वयं कार्यान्वित करने लगेगा, उसमें अभी काफी देर है । बालकों के लिए वैसे साधन एवं शिक्षण तो अभिभावकों को ही प्रस्तुत करते रहने हैं ताकि बड़ा होने पर वह इस रीति-नीति को अपनाये रह सके ।

यज्ञावशिष्ट भोजन-

अग्निस्थापन के उपरांत सामान्य हवन विधान करते हुए गायत्री मंत्रों की आहुतियाँ तक का कार्य पूर्ण कर लेना चाहिए । इसके पश्चात् स्विष्टकृत से पूर्व पाँच आहुतियाँ खीर की माता-पिता को देनी चाहिए । इसमें से जो खीर बचे उसे बालक को खिलाना चाहिए । चाँदी के चम्मच से पाँच बार थोड़ी-थोड़ी करके भी खीर बालक को चटानी चाहिए । इसका मंत्र "ॐ अन्नपते अन्नस्य..." है ।

यज्ञ से बचा हुआ अन्न ही खाया जाय । इस तथ्य को बालक के मुख में सर्व प्रथम अन्नग्रास देते हुए समझाया जाता है । अपनी कमाई में से प्रथम सामाजिक उत्कर्ष की आवश्यकता पूरी की जानी चाहिए । अपने से भी अधिक पिछड़े हुए, गिरे हुए, दुःखी, दिग्भ्रान्त लोगों को प्रकाश पहुँचाने के लिए सर्व प्रथम अपनी कमाई का उपयोग होना चाहिए । फालतू पैसा या समय बचे तब कुछ शुभ कार्य के लिए दिया जा सकता है, ऐसा सोचना धर्म विरुद्ध है । मानवता का आदर्श यह है कि प्राथमिकता लोक-मंगल को मिलनी चाहिए और अपनी सुविधा का प्रश्न दूसरे नम्बर पर रहना चाहिए । दान करना किसी पर अहसान करना नहीं है, वरन् धर्म की-'ऐक्साइज ड्यूटी' है । उत्पादन कर चुकाये बिना जिस तरह माल फैक्टरी से बाहर नहीं निकल सकता उसी तरह लोक-मंगल के

लिए अपना आवश्यक योग–दान दिये बिना शरीर, मन और धन अशुद्ध एवं अनुपयुक्त ही बना रहता है । इस प्रकार का अनुपयुक्त उपयोग अवांछनीय एवं धर्म विरुद्ध ही ठहराया गया है ।

बालक को सर्वप्रथम यज्ञ से बचा हुआ आहार ही खिलाया जाता है । इस प्रक्रिया द्वारा उस पर यही संस्कार डाला जाता है कि जब वह कमाने लायक हो, श्रम करने लायक समर्थ हो तो अपनी शक्ति, सम्पदा एवं विभूति का एक बड़ा अंश सर्वप्रथम लोक–मंगल के सत्कार्यों में लगाने के लिए सुरक्षित रख ले । इसके पश्चात् जो समय, जो धन बचे उसे अपने तथा अपने परिवार के गुजारे में खर्च किया करे । अपनी पूरी कमाई अपने लिए ही खर्च करेगा, लोकमंगल का अंश न देगा तो कहना चाहिए कि वह एक प्रकार का अपराधी जीवन जी रहा है । सरकारी कानून में ऐसे लोगों के लिए कोई दण्ड विधान भले ही न हो पर ईश्वरीय कानून में निश्चित रूप से वह एक ऐसा अपराध है, जिसके फलस्वरूप अगले जीवन में उसे सब प्रकार की सुविधाओं से रहित कृमि–कीटों की योनियों में भटकने का दण्ड मिल सकता है ।

घरों में अग्नि–देव को बने हुए भोजन के प्रथम छोटे–छोटे पाँच ग्रास घी और शक्कर में मिलाकर होमने का रिवाज है । यह धर्म परम्परा प्रायः सभी आस्तिक घरों में चलती थी । जहाँ लुप्त हो वहाँ फिर चलनी चाहिए ताकि लोग समझ सकें कि यज्ञ भगवान को प्रथम भोजन कराके ही तब स्वयं भोजन करना चाहिए । इसका सन्देश यह है कि प्रथम परमार्थ का भाग निकाला जाय तब अपने खर्च की व्यवस्था बनाई जाय ।

क्षीर प्राशन (खीर बनाना)–

दूध और चावल से बनी खीर बालक का प्रथम आहार है । यह सुपाच्य एवं सात्विक गुण होने से देव कार्यों में प्रयुक्त होती है ।

त्यौहारों, शुभ अवसरों एवं प्रीति–भोजों में खीर की प्रधानता रखी जाती है । सुपाच्य और सात्विक यही दो कारण हैं जिनसे आहार में प्रमुखता खीर को मिली है ।

बालक के आहार में इन दोनों तथ्यों का बराबर ध्यान रखा जाय । उसे कोई ऐसी चीज न दी जाय जो पाचन में कठिनाई उत्पन्न करे । मात्रा इतनी अधिक न हो जो आमाशय और आँतों पर भार बन कर बालक के जीवन का संकट बन जाय । तमोगुणी, रजोगुणी मिर्च मसाले वाले चटपटे पकवान, मिष्ठान्न, नशीले पदार्थ उसके कोमल शरीर पर भयानक प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं । शरीर में अनेक प्रकार के रोग और मन में विविध–विध विकार उत्पन्न करते हैं । जिगर बढ़ाना, तिल्ली, दस्त, काँच निकलना, पेट में कीड़े, नाक से पानी बहना, अधिक रोना, चिड़चिड़ापन, नींद कम आना जैसे रोगों का एक मात्र कारण अपच होता है । जो अभिभावक बालकों के आहार की मात्रा, खाने के समय एवं सुपाच्यता, सात्विकता का ध्यान नहीं रखते वे उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को बिगाड़ने के अपराधी होते हैं । आज की स्थिति यही है । लोग बच्चे पैदा तो कर लेते हैं, पर उनके आहार तक के बारे में समुचित ज्ञान नहीं रखते, अनावश्यक मात्रा में अनुपयुक्त चीजें खिलाते रहते हैं । फलस्वरूप बालक रोगी होते हैं और अकाल में ही काल–कलवित हो जाते हैं । हमारे देश में इस प्रकार की शिशु हत्या बड़ी मात्रा में अभिभावकों द्वारा ही की जाती है । भले ही वे भूल अज्ञानवश करते हों, पर इससे भी क्या, विष अगर भूल से भी खा लिया जाय तो उसका प्रतिफल तो मिलेगा ही । संसार में बाल मृत्यु की औसत सबसे अधिक भारत में ही है, इसका प्रधान कारण छोटे बालकों का आहार सम्बन्धी अज्ञान ही समझना चाहिए । लाड़वश जो अनुपयुक्त आहार कराया जाता है, वही बालकों के लिए प्राणघातक बन जाता है ।

खीर खिलाने में इस तथ्य की ओर प्रत्येक अभिभावक का

ध्यान आकर्षित किया जाता है कि अधिक मात्रा व अनुपयुक्त भोजन के खतरे को समझें और बच्चे को कुछ भी खिलाते समय इस सम्बन्ध में पूरी–पूरी सतर्कता बरतें । भोजन देने, कराने का उत्तरदायित्व कुछ ही व्यक्तियों पर रहना चाहिए । हर कोई, चाहे जो चीज चाहे जब मुँह में ठूँस दे इसकी रोकथाम रखी जानी बालक की जीवन रक्षा के लिए बहुत ही आवश्यक है ।

इस सम्बन्ध में स्मरणीय बातें नीचे दी जा रही हैं । इनका ध्यान रखा जाय, तो अन्न–प्राशन संस्कार का समुचित लाभ मिल सकता है ।

(१) जन्म से लेकर पाँच महीने तक बालक को दूध पर रखना चाहिए, जब तक माता के दूध से पेट भरता रहे और बच्चे का पेट भरा रहे तथा वह भूख से रोये–चिल्लाये नहीं तब तक माता का दूध ही दिया जाय ।

(२) जब माता का दूध कम पड़ने लगे तो गाय या बकरी का दूध दिया जाय । बच्चे की पाचन शक्ति का अनुमान लगाकर इस प्रकार के दूध की मात्रा नियत करनी चाहिए । माता का दूध या बाहरी दूध नियत समय पर ही दिया जाय । साधारणतया अधिक स्वस्थ बच्चे को तीन–तीन घण्टे बाद और कमजोर बच्चे को चार–चार घण्टों बाद दूध दिया जाना चाहिए ।

(३) माता का और बाहरी दूध मिलाकर चौबीस घण्टे में प्रायः एक सेर पर्याप्त होता है । पहले, दूसरे महीनों में कुछ कम और तीसरे, चौथे, पाँचवे महीनों में इससे कुछ अधिक की आवश्यकता पड़ सकती है । इसलिए एक–सी मात्रा नहीं हो सकती । वह उनके स्वास्थ्य पर निर्भर है । पर यह मोटा अनुमान समझना चाहिए कि कुल मिलाकर रोज एक सेर दूध हो ।

(४) जिस बोतल से दूध पिलाना हो उसे गरम पानी से भीतर

तक अच्छी तरह धो लिया जाय और रबड़ की चुसनी को धोने के बाद धूप में सुखा भी लिया जाय । इनमें गन्दगी रहने से स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है ।

(५) यदि ऊपर का दूध आधा सेर से अधिक दिया जा रहा हो तो उसमें थोड़ा-थोड़ा करके आधी छटाँक से लेकर एक छटाँक तक मीठे सन्तरे का रस भी मिलाते रहना चाहिए ।

(६) छठे मास में दूध के अतिरिक्त अन्य आहार देना आरम्भ किया जा सकता है । आरम्भ से दूध में चावल या गेहूँ का दलिया काफी पतला बनाकर देना चाहिए । दिन में एक-एक चम्मच दो-तीन बार देने से आरंभ करना चाहिए और फिर इसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए ।

(७) छः महीने बाद टमाटर, लौकी, गाजर, परवल, तुरई आदि शाकों को पकाकर उसका पतला रसा थोड़ा-थोड़ा करके देना भी आरम्भ किया जाय । थोड़ा नमक, जीरा उसमें डाला जा सकता है । तेज मिर्च-मसालों से बचाया जाय ।

(८) अन्न की मात्रा क्रमशः बढ़ानी चाहिए । बच्चा हजम कर पा रहा है या नहीं, इसकी परीक्षा उसके पेट की मुलायमी तथा टट्टी के गाढ़ेपन को देखकर की जा सकती है । पेट कड़ा, उठा तथा फूला हुआ प्रतीत हो, दस्त अधिक संख्या में तथा अधिक पतले जाने लगे तो अपच समझकर उसका अन्न कम कर देना चाहिए । फलों का रस, शाक तथा दूध देते रहना चाहिए । दही भी दिया जा सकता है । छोटे बच्चों को घी नहीं देना चाहिए ।

(९) पानी पिलाते रहने का ध्यान रखना चाहिए । पानी के साधन अधिक दीखने पर बच्चे अनावश्यक पानी पी जाते हैं और पानी दिखाई न देने पर उसे पीना भूल जाते हैं । इससे दोनों ही तरह हानि होती है ।

(१०) बच्चों को हँसने–खेलने, दौड़ने–भागने का पूरा अवसर देना चाहिए, जिससे शारीरिक श्रम होता रहे और अन्न हजम हो जाय ।

(११) पिछला खाया हुआ भोजन पचा या नहीं यह अनुमान लगा लेना सामान्य बुद्धि वाले माता–पिता के लिए कुछ भी कठिन न होना चाहिए । इसी प्रकार यह जानकारी होना भी कुछ कठिन नहीं कि बीमार, कमजोर या बालकों के लिए हलका और सुपाच्य भोजन क्या हो सकता है ? यदि अपनी जानकारी कम हो तो किसी कुशल चिकित्सक से इस सम्बन्ध में परामर्श लिया जा सकता है । भोजन कम पौष्टिक भले ही हो पर गरिष्ठ न हो । मात्रा कम भले ही रह जाय पर आवश्यकता से अधिक न बढ़नी देनी चाहिए ।

(१२) चाय जैसी नशीली चीजें बालकों को न दी जाँय । कृत्रिम नींद लाने के लिए बच्चों को अफीम खिला देती हैं । नशे बालक के पेट, मस्तिष्क, शरीर और स्वभाव को बिगाड़ देते हैं । इसलिए उनसे बचाव करना चाहिए ।

(१३) माँस, मछली, पक्षियों का शोरवा, अण्डे, मछली का तेल आदि अभक्ष्य पदार्थों से बालकों को सर्वथा दूर रखना चाहिए । आजकल डाक्टर लोग और अँग्रेजी सभ्यता में रंगे हुए लोग इन चीजों को एक फैशन समझकर या लाभदायक बताकर खाने पर जोर देते हैं, पर सच बात यह है कि ये वस्तुयें मनुष्य का स्वाभाविक आहार न होने से अन्ततः शरीर को ही हानि पहुँचाती हैं । मन एवं स्वभाव को आसुरी बना देना तो निश्चित है । आहार का मन पर जो प्रभाव पड़ता है उसे ध्यान में रखते हुए ऐसे अभक्ष्य पदार्थों को दूर रखना ही उचित है ।

(१४) आहार गटक से निगल न लिया जाय वरन् धीरे–धीरे चबाकर खाया जाय, इस आदत को आरम्भ से ही डालना चाहिए ।

(१५) बालकों में विचार कम होता है, उनकी क्रियायें आदत के आधार पर चलती हैं । भोजन का वातावरण सामने रहे, घर के अन्य लोग खाते हुए दिखाई पड़ें तो बालक भी उनके पास जा पहुँचता है । वे लाड़ वश उसे खिलाते रहते हैं, इस प्रकार सब के साथ वह खाता रहता है । अब उसे आदत पड़ जाती है । पेट में गुन्जायश न होने पर भी वह खाने का आग्रह करता रहता है, इससे स्वास्थ्य बिगड़ता है । खाने के समय उसे चौके से दूर रखा जाय, कम से कम तीन घण्टे के अन्तर से उसे थोड़ा-थोड़ा आहार दिया जाय । बच्चे का भोजन विशेषतया हल्का होना चाहिए । इसलिए उसे बड़े लोगों के भारी भोजन से वैसे भी अलग ही रखा जाना चाहिए ।

(१६) अधिक मीठा खाने की आदत से बालक के दाँत खराब होते हैं, हड्डियाँ टेढ़ी पड़ जाती हैं, पेट में कीड़े पड़ते हैं और कई तरह की बीमारियाँ पैदा होती हैं । इसलिए लाड़-चाव में मीठा देने की अपेक्षा उसे ऐसे फल देने चाहिए जो सुपाच्य हों ओर कच्चे या सड़े-गले न हों ।

(१७) हाथ के पिसे आटे या दलिया का यदि उपयोग किया जाय तो मशीन के पिसे या बाजार से खरीदे आटे की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा रहेगा । तेज आग पर पकाने से, भूनने-जलने से भोजन का जीवन तत्व नष्ट हो जाता है, इसलिए यदि कुकर में पकाई हुई वस्तुयें दी जायें तो उनमें सजीवता अधिक रहने से बालक का हित भी अधिक रहता है ।

(१८) एक वर्ष का होने पर बालक से माता का दूध छुड़ा देना चाहिए । अधिक दिनों तक दूध पीते रहना न बालक के लिए आवश्यक है और न माता के लिए उपयुक्त ।

(१९) बच्चे गन्दे हाथों से, जहाँ-तहाँ जमीन में या अनुपयुक्त स्थान पर रखकर भोजन खाने लगते हैं, गन्दे बर्तनों में पानी पी लेते

हैं । कोई खिलौना आदि चूसने लगते हैं । उसमें लगी गन्दगी पेट में पहुँचकर स्वास्थ्य को हानि पहुँचाती है । इसलिए खाने-पीने के सम्बन्ध में स्वच्छता का पूरा ध्यान रखा जाय ।

(२०) जब बालक क्रोध में हो, रो रहा हो, सोया हुआ हो तो उस स्थिति में उसे कुछ खिलाया-पिलाया न जाय । क्रोध के समय पेट में पहुँचा हुआ भोजन हानिकारक होता है । इसलिए बच्चा प्रसन्न एवं जागृत हो तभी उसे खिलाया-पिलाया जाय । माता यदि क्रोध या शोक में है, तो भी उस समय बालक को अपना दूध न पिलावे । क्षुब्ध मन के समय शरीर की स्थिति भी अनुपयुक्त हो जाती है, उस समय जो दूध निकलेगा, वह बालक पर बुरा प्रभाव डालेगा ।

आहार सम्बन्धी यह बीस मोटे नियम हैं । यदि इन्हें भली प्रकार समझा और काम में लाया जाय तो बालक की स्वास्थ्य-रक्षा हो सकती है । अकाल में ही जो लाखों शिशु काल-कवलित हो जाते हैं उनके प्राण बच सकते हैं । भोजन सम्बन्धी नियमों के व्यतिक्रम से आधे बच्चे मरते हैं । अभिभावक यदि थोड़ी सावधानी बरतें तो उनके प्राण बचाये जा सकते हैं । बालकपन में अनुपयुक्त ढ़ंग से आहार करते रहने पर कितने ही बच्चों के पेट आरंभ से ही दुर्बल हो जाते हैं और वे किसी प्रकार बचे रहने पर भी बड़े होकर अनेक उदर विकारों से ग्रसित रहते हैं । बचपन का बिगड़ा पेट बड़े होने पर नियम-सेवन व दवा-दारू से भी ठीक नहीं रह पाता । पेट खराब रहने से स्वास्थ्य का सारा ढाँचा ही चरमरा जाता है । अपच रहने से रक्त दूषित बनता है और उससे अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती रहती हैं । जिसका शरीर कमजोर, बीमार रहेगा, भावनायें वैसी ही विश्रृंखलित रहेंगी । ऐसी दशा में उसका जीवन-क्रम ही अस्त-व्यस्त हो जायगा ।

जिन अभिभावकों को अपने बालकों का भविष्य उज्ज्वल बनाना

हो उन्हें उनके शरीर की, स्वास्थ्य की नींव आरम्भ से ही मजबूत बनानी चाहिए । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल साधन आरोग्य ही तो है । स्वास्थ्य बिगड़ गया तो यह चारों ही बिगड़ेंगे । स्वास्थ्य की स्थिरता आहार की सुव्यवस्था पर निर्भर है । इसलिए जब तक बालक अबोध है तब तक अभिभावकों को उसका पेट खराब न होने का उत्तरदायित्व सँभालना चाहिए और जब बच्चा थोड़ा समझदार हो जाय तो उसे ऐसी आदतें डाल देनी चाहिए जिससे वह स्वयं ही अपने स्वास्थ्य के मूल आधार पेट को सुव्यवस्थित बनाये रह सके ।

(१) कड़ी भूख लगने पर ही खाना, (२) भूख से कम खाना, (३) चबा-चबाकर खाना, (४) भोजन नाक को सिकोड़ते हुए नहीं खाना चाहिए, भगवान का प्रसाद समझकर प्रसन्न चित्त से खाना चाहिए, (५) पकवान और मिठाइयों का, तले-भुने पदार्थों का कम से कम उपयोग करना, (६) दिन में दो बार ही खाना, (७) मिर्च-मसालों से बचना, (८) मांसाहार से सर्वथा दूर रहना, (९) नशा न करना, (१०) शाक और फलों की मात्रा भोजन में आधी रखना और दूध-दही को प्रमुखता देना । यह दस नियम आहार के सम्बन्ध में सदा बरतने के हैं । शुद्ध वातावरण में, शुद्ध स्थान पर, शुद्ध पात्रों में, शुद्ध व्यक्तियों द्वारा बनाया हुआ आहार का भी व्यवहार किया जाय । आहार की पौष्टिकता जितनी आवश्यक है उतनी ही उसकी शुद्धि भी अपेक्षित है । जाति-बिरादरी के आधार पर मानी जाने वाली आज की निरर्थक छूत के स्थान पर हमें भोजन की वैज्ञानिक स्वच्छता एवं शुद्धता का ही ध्यान रखना चाहिए । जब भोजन किया जाय तो मन प्रसन्न रहे । कोई आवेश या क्षोभ उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ या बातें उस समय न हों ।

बालक के अन्न-प्राशन संस्कार कराने का प्रयोजन यही है कि इन विषयों के आधार पर उसकी आहार क्रिया चले । यह प्रशिक्षण

विशेषतया अभिभावकों के लिए हैं क्योंकि बालक की अबोध अवस्था में इस दिशा में पूरी देखभाल रखने और बड़े होने पर ऐसी ही आदतें डालने की जिम्मेदारी उन्हीं की है । स्वास्थ्य रक्षा के अन्य नियम भी हैं, जैसे व्यायाम, सफाई, जल्दी सोना, जल्दी उठना, प्रसन्न रहना, ब्रह्मचर्य आदि अन्य बातें भी आवश्यक हैं, उन्हें भी सिखाना और उपयोग में लाना चाहिए तभी सर्वांगीण स्वास्थ्य रक्षा संभव होगी, पर चूँकि बालक जब अन्न खाने योग्य हुआ है और उसका संस्कार उसी संदर्भ से किया जाता है तो प्रशिक्षण भी इसी संबंध का होना चाहिए । अतएव इस अवसर पर उस संबंध में ही अधिक विचार किया गया है । तथ्य यह भी है कि स्वास्थ्य रक्षा का तीन चौथाई आधार आहार पर निर्भर है, इसलिए उस पर अधिकाधिक ध्यान दिया ही जाना चाहिए ।

इन बातों का ध्यान रखा जाय

यह बात ध्यान रखने की है कि बालक का शारीरिक विकास संतुलित आहार पर निर्भर है । यदि अभिभावक अपने बच्चे का हित चाहते हैं, तो उन्हें चाहिए कि थोड़ा विवेक से काम लें । अपना स्वास्थ्य उन्होंने आहार सम्बन्धी जिन बुराइयों या बुरी आदतों से बिगाड़ा है उन्हें बच्चों में न पड़ने दें । जो अभक्ष्य और अखाद्य खाकर उन्होंने अपना स्वास्थ्य नष्ट किया है, उसे बालकों को न खाने दें । शरीर और कुछ नहीं अन्न का ही प्रत्यावर्तन है । यदि निरोग, दीर्घजीवी, स्फूर्तिवान्, कान्तिवान् शरीर अभीष्ट हो तो उसके निर्माण के लिए आहार संबंधी उपयुक्त वस्तुओं का चुनाव एवं खान-पान संबंधी अच्छी आदतों का अभ्यास कराने की जिम्मेदारी भी अभिभावकों को ही उठानी चाहिए । बच्चा क्या पसंद करता है, क्या चाहता है, क्या माँगता है, कब किसके लिए मचलता और ललचाता है इसको महत्व न देकर इस बात को महत्व देना चाहिए कि उसकी भलाई एवं प्रगति किस प्रकार संभव है ।

इसके लिए केवल बच्चे को डराने–धमकाने या उस पर प्रतिबंध लगाने से काम न चलेगा । सारे घर का वातावरण ही बदलना पड़ेगा । मिर्च–मसाले खाकर, चाय काफी पीकर बच्चे अपनी आँतों को तथा रक्त को खराब न करें, यदि यह अभीष्ट हो तो बच्चे के आहार में से ही नहीं, सारे घर के आहार में से इस प्रकार की अनुपयुक्त वस्तुओं को हटाना पड़ेगा । अन्यथा आगे–पीछे देखा–देखी उन सब चीजों को बच्चे सीख ही जायेंगे । घर में जिस प्रकार का वातावरण बना हुआ है, दूसरे लोग जिन आदतों से ग्रसित हैं उससे बालकों को बचाया नहीं जा सकता ।

यह भी स्मरण रखने की बात है कि आहार शरीर से ही नहीं मन से भी प्राप्त किया जाता है । अन्न द्वारा शरीर का और विचार द्वारा मन का पोषण एवं निर्माण होता है । शरीर ही नहीं मन भी निरोग एवं समर्थ रखा जाना आवश्यक है । पूर्ण स्वस्थता शरीर और मन दोनों के निरोग रहने पर ही उपलब्ध होती है । साहस, धैर्य, स्वच्छता, उदारता, श्रमशीलता, सज्जनता जैसे गुणों का विकास कर सकने वाले विचार बच्चों को आरम्भ काल से ही दिये जाने चाहिए । यह कार्य भी कोई उपदेशों से न बन पड़ेगा । यदि गन्दगी, कलह, ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, भय, आलस, उच्छृंखलता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ घर में फैल रही हों तो बच्चा अपनी संवेदनशीलता के कारण मानसिक दृष्टि से रुग्ण बनता जायगा और उसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ेगा । आहार और व्यवहार दोनों की उपयुक्त खुराक बच्चे को पहुँचती रहे उसकी समुचित प्रेरणा अभिभावकों को करना ही "अन्न–प्राशन–संस्कार" का प्रमुख उद्देश्य है ।

"अन्न–प्राशन–संस्कार" की व्याख्या में आठ श्लोक संस्कार पद्धति में दिये गये हैं, उनमें उपरोक्त विचारों का प्रतिपादन है । जिस विचार का प्रसंग हो, उसमें से उसी सम्बन्ध का श्लोक उद्धृत कर प्रतिपादित विषय की पुष्टि की जा सकती है ।

अन्य संस्कारों की भाँति गायत्री यज्ञ का शेष कार्यक्रम पूरा करते हुए उपस्थित लोग अक्षत पुष्पों की वर्षा करते हुए "ॐ श्री वर्चस्व०" मन्त्र से बालक को आशीर्वाद दें और सत्संकल्प पाठ के साथ कार्यक्रम पूरा समाप्त किया जाय ।

⊙

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us
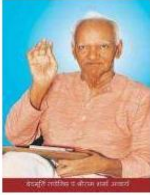
- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्‌बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्‌भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऎसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।